दशलक्षण पर्व की ऐतिहासिकता

प्रो.अनेकांत कुमार जैन*

प्राय: प्रत्येक पर्व का संबंध किसी न किसी घटना, किसी की जयंती या मुक्ति दिवस से होता है। दशलक्षणमहापर्व का संबंध इनमें से किसी से भी नहीं है क्योंकि यह स्वयं की आत्मा की आराधना का पर्व है।दशलक्षण पर्व आत्मा (अंतस) तथा उसे ज्ञान दर्शन चैतन्य स्वभावी मानने वालों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। जैन परंपरा में इन दिनों श्रावक-श्राविकाएं, मुनि-आर्यिकाएं पूरा प्रयास करते हैं कि आत्मानुभूति को पा जाएं, उसी में डूबें तथा उसी में रम जाएं।

जैन परंपरा के लगभग सभी पर्व हमें सिखाते हैं कि हमें संसार में बहुत आसक्त होकर नहीं रहना चाहिए । संसार में रहकर भी उससे भिन्न रहा जा सकता है जैसे कमल कीचड़ में रहकर भी उससे भिन्न होकर खिलता है । यह कार्य अनासक्त भाव से रहने की कला जानने वाला सम्यग्दृष्टि साधक मनुष्य बहुत अच्छे से करता है । दशलक्षण महापर्व भी एक ऐसा ही पर्व है जो हमें भेद विज्ञान करना सिखाता है , वह कहता है कि पाप से बचने का और कर्म बंधन से छूटने का सबसे अच्छा उपाय है-भेद विज्ञान की दृष्टि ।

दशलक्षण पर्व वर्ष में तीन बार मनाया जाता है। भाद्र, माघ तथा चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में पंचमी से लेकर चतुर्दशी तक दस दिन सभी भक्त अपनी-अपनी भक्ति तथा शक्ति के अनुसार व्रत का पालन करते हैं। चातुर्मास स्थापना के कारण भादों में आने वाले दशलक्षण महापर्व का महत्व वर्तमान में सर्वाधिक है। भाद्रपद शुक्ल पंचमी से भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी तक दस दिन यह पर्व दिगंबर संप्रदाय में विशेष रूप से मनाते हैं इसे ही दशलक्षण महापर्व कहते हैं ।

दशलक्षण पर्व का आरम्भ –

दशलक्षण पर्व की शुरुआत कब से हुई? इस प्रश्न का उत्तर किसी तिथि या संवत् से नहीं दिया जा सकता। ये शाश्वत पर्व है चूँकि आत्मा द्रव्यार्थिक नय (द्रव्य दृष्टि) से नित्य अजर-अमर है और धर्म के दशलक्षणों का भी संबंध आत्मा से है। अत: जब से आत्मा है तभी से यह पर्व है। अर्थात् अनादि अनन्त चलने वाला यह पर्व किसी जाति संप्रदाय या मजहब से नहीं बंधा है। आत्मा को मानने वाले तथा उसे ज्ञान दर्शन चैतन्य स्वभावी मानने वाले सभी लोग इस पर्व की आराधना कर सकते हैं।

आचार्य यातिवृषभ के अनुसार आषाढ़ मास की पूर्णिमा के दिन पाँच वर्ष प्रमाण युग की पूर्णता और श्रावणकृष्णा प्रतिपदा के दिन अभिजित् नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर उस युग का प्रारंभ होता है।[1]तथा उत्सर्पिणी काल के प्रारंभ में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से 49 दिनों तक सुवृष्टियों के माध्यम से सृष्टि की रचना प्रारंभ होती है। तब सात-सात दिन तक पुष्कर, क्षीर, अमृत, रस, औषध व सुगंध जलादि की वर्षा होने से जली हुई भूमि शीतल हो जाती है।

1. सात दिन पुष्कर मेघ सुखोत्पादक जल बरसाते हैं, जिससे जली हुई,पृथ्वी शीतल हो जाती है।
2. सात दिन क्षीर मेघ दूध की वर्षा करते हैं, इससे यह पृथ्वी उत्तमकांति युक्त हो जाती है।
3. सात दिन अमृत मेघ अमृत वर्षा करते हैं।
4. सात दिन इस अमृतमयी भूमि पर लता गुल्म, पुष्प, फल आदि की वर्षा होती है।
5. उस समय रस मेघ सात दिन तक दिव्य रस वर्षा करते हैं, इससे समस्त पृथ्वी रसमय हो जाती है।
6. विविध-रस पूर्ण औषधि सात दिन बरसती है, उससे यह पृथ्वीसुस्वादु हो जाती है।
7. अंत में शीतल गंध सात दिन तक बरसती है।[2]

---

[1] आसाढपुण्णिमीए जुगणिप्पत्ती दु सावणे किण्हे।
अभिजिम्मि चंदजोगे पाडिवदिवसम्मि पारंभो।।

-तिलोयपण्णत्ति,गाथा-7/533, भाग 3,पृष्ठ 395

तथा च,
सावणबहुले पाडिवरुद्दमुहुत्ते सुहोदये रविणो।
अभिजस्स पढमजोए जुगस्स आदी इमस्स पुढं।।

- वही,गाथा 1/70,भाग 1 ,पृष्ठ 16

[2] पोक्खरमेघा सलिलं वरिसंति दिणाणि सत्त सुहजणणं।
वज्जग्गिणिए दड्ढा भूमि सयला वि सीयलो होदि।।
वरिसंति खीरमेघा खीरजलं तेत्तियाणि दिवसाणिं।
खीरजलेहिं भरिदा सच्छाया होदि सा भूमि।।
तत्तो अमिदपयोदा अमिद वरिसंति सत्तदिवसाणिं।
अमिदेणं सित्ताए महिए जायंति वल्लिगुम्मादी।।
ताधे रसजलवाहा दिव्वरसं पवरिसंति सत्तदिणे।
दिव्वरसेणाउण्णा रसवंता होंति ते सव्वे।।
विविहरसोसहिभरिदा भूमी सुस्सादपरिणदा होदि।
तत्तो सीयलगंधं णादित्ता णिस्सरंति णरतिरिया।।

उन 49 दिनों की गणना भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को पूर्ण होती है। इस प्रकार हुई सुवृष्टि की शीतल सुगंध पाकर विजयार्ध की श्रेणियों में छिपे वे मनुष्य व तिर्यंच के 72-72 युगल व संख्यात जीव राशि गुफाओं से बाहर निकल पुनः इस प्रदेश में आकर निवास करते हैं और शांति की श्वास लेते हैं। उस समय मनुष्य भी तिर्यच के समान फल फूल खाते हैं और यह आर्यखण्ड की भूमि दर्पण के समान सुन्दर हो जाती है। गुफाओं में से निकले वे मनुष्य व तिर्यंच और ऐसी संख्यात जीव राशि संसार की क्षणभंगुरता का विचार कर भव भोगों की असारता को प्रत्यक्ष देखते हुए वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की शरण लेते हैं और धर्म आराधना में तत्पर हो जाते हैं। उन मनुष्यों के स्वभाव कोमल व नम्र होते हैं, वे जिनधर्म के श्रद्धालु पापभीरू होते हैं। यह दिन मनुष्य के आयु, तेज, बुद्धि, बाहुबल, क्षमा, धैर्य आदि के विकास का मांगलिक दिन माना जाता है-

आऊ तेजो बुद्धी,बाहुबलं तह य देह -उच्छेहो ।।

खंति-धिदि-प्पहुदीहो,काल सहावेण वड्ढंति ।[3]

चूँकि सृष्टि का वृद्धिंगत सुखद प्रारंभ भाद्रपद शुक्ला पंचमी से होता है,और चतुर्दशी तक माना गया है,इसलिए इन्हीं तिथियों में आत्मधर्म विकास के मूल क्षमा आदि दशलक्षण के प्रगट होने रूप घटना को पर्व के रूप में मनाना प्रारम्भ करके आत्म विशुद्धि की भी परंपरा प्रारंभ की गई।

मनुष्य प्रलयकाल के दुःखद अनुभव से विमुक्त होकर एक सुखद अनुभव की ओर बढ़ने तथा अपने पूर्वकृत पापकर्मों का विचार करते हुए खेद-खिन्न होते हुए मंदकषाय रूप प्रवर्तन से व्यवहार धर्म को प्राप्त होते हैं। संभवतः इसीलिए इसी काल की तिथियों को धर्माराधना की तिथि स्वीकार कर उत्तमक्षमादि शाश्वत दशलक्षण पर्व का पुनः शुभारंभ स्वीकार किया गया है।

वर्तमान में प्रचलित प्रतिक्रमण पाठ गणधर कृत हैं और श्रुत परंपरा की ही तरह वह आज भी मुनि संघों में उच्चारित होते हुए विद्यमान हैं ,आचार्य प्रभाचंद्र जी ने उस पर एक संस्कृत टीका भी लिखी है। इस प्रतिक्रमण पाठ में दशलक्षण धर्म का उल्लेख बहुत बार हुआ है। उसकी आराधना में हुए दोषों का प्रतिक्रमण का विधान है –

जइदसधम्मा पवयणमादा अट्ठारससंपरायगुणा ।

फलमूलदलप्पहुदिं छुहिदा खादंति मत्तपहुदीणं।
णग्गा गोधम्मपरा णरतिरिया वणपएसेसुं।।

वही,गाथा 4/1579-1584,भाग 2 ,पृष्ठ 452-453

[3] वही,गाथा 4/1586,भाग 4,पृष्ठ 454

तेहिंतो जं विरमणमसंपरायत्ति णिद्दिट्ठं॥[4]

दशलक्षण पर्व मनाने की परंपरा सृष्टि के आदि से ही इस प्रकार प्रवर्तित हुई कि भरतक्षेत्र के अंग देश की चंपा नगरी के राजा का नाम ही धर्मरूचि इस कारण पड़ा क्यों कि उसे दशलक्षण धर्म पर्व की आराधना में बहुत रूचि थी और उसने भगवान् महावीर से दश धर्म का स्वरुप सुनकर संयम अंगीकार किया था । [5] महापुराणकार का कहना है कि इन उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध मूलतः मुनिचर्या से है । [6]

भाद्रमास में इस पर्व को अधिक उत्साह से मनाया जाता है उसका कारण यह है कि इस माह को अन्य सभी माह का राजा कहा जाता है । मल्लिपुराण में कहा है –

अहो भाद्रपदाख्योऽयं मासोऽनेकव्रताकरः।

धर्महेतुपरो मध्येऽन्यमासानां नरेन्द्रवत् ॥[7]

अनेक पदों से युक्त यह भाद्रपद मास धन्य है । यह धर्म की वृद्धि करने वाला है तथा अन्य महीनों रुपी मुसाहिबों में राजा के समान शोभायमान है ।

आचार्य विद्यानंद महाराज अपनी पुस्तक 'विश्वधर्म के दशलक्षण' में भाद्रमास के बारे में लिखते हैं कि[8] 'इस मास में षोडशकारण व्रत ,दशलक्षण व्रत और अनंतचतुर्दशी व्रत आदि विविध धार्मिक व्रत ,पर्व ,उत्सव आते हैं और जैसे किसी की जन्मकुंडली में 'एकावली योग' बैठ गया हो ;उसी प्रकार पवित्र व्रत पर्वों की यह श्रृंखला भाद्रपद मास में बनी रहती है । '

दशलक्षणधर्म के व्रतों को पूर्ण करके मुक्त होने वाले अनेक भव्य जीवों की कथायें प्रसिद्ध हैं। मृगांकलेखा, कमलसेना, मदनवेगा और रोहणी नाम की कन्याओं ने दशधर्मों की आराधना मुनिराज के वचनानुसार की तो उनको भी अगले भव में इस पर्याय से मुक्ति मिली तथा आत्मानुभूति प्राप्त हुई। यह कथा पुरानी हिंदी में विस्तार के साथ 'दशलक्षणव्रतकथा' में मिलती है जिसकी रचना विनयसागर के शिष्य एवं कवि हरिकृष्ण पाण्डे ने अठारहवीं शती में भाद्र पद शुक्ल पंचमी ,वि.सं.1765 में की थी,ब्रह्मज्ञानसागर जी ने भी यह कथा चौपाई छंद के 36 पद्यों में की है । ये दोनों ही अप्रकाशित मूल प्रतियाँ श्री दिगंबर जैन पंचायती मंदिर दिल्ली में उपलब्ध हैं ।इनके अलावा महाकवि ब्रह्म जिनदास,औसेरीलाल,खुशालचंदकाला,भैरोंदास और विनयकीर्ति द्वारा हिंदी में रचित दशलक्षणव्रतकथा,भगवतीदास कृत दशलाक्षणिकरासा

---

[4] प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी,गौतम स्वामी विरचित ,संपादक -पंडित मोतीचंद,प्रका.जिनसेन भट्टारक ,शोलापुर,प्रथम संस्करण ,वीर निर्वाण -2473,पृष्ठ-50

[5] महापुराण ,76.8-29

[6] महापुराण ,61. 1

[7] मल्लिपुराण,2/39

[8] 'विश्वधर्म के दशलक्षण'- आचार्य विद्यानंद मुनि,प्रकाशक-कुन्दकुन्दभारती,दिल्ली,तृतीय संस्करण 1999,पृष्ठ -4

हमें उपलब्ध होता है । यह कथा व्रत विधि विधान संग्रह में भी उपलब्ध है ।[9] इन हिंदी कथाओं का मूल आधार कोई प्राचीन साहित्य अवश्य रहा होगा -ऐसा विश्वास है तथा वह अनुसंध्येय है ।

इसके अलावा भी अनेक कथाएं हो सकती हैं जिनसे यह पता लगता है कि सम्यग्दर्शन पूर्वक दशलक्षण धर्म की आराधना करने वाले जीवों को मुक्ति प्राप्त हुई।

डॉ.कस्तूरचंद जी कासलीवाल जी ने इस पर्व के सामाजिक स्तर पर मनाने सम्बन्धी तथ्यों की काफी छानबीन की है और उनसे प्राप्त तथ्यों में वि.संवत 1350(ईश्वी 1253)से लेकर संवत 1833 (ईश्वी 1776)तक का उल्लेख किया है ,जिसमें दशलक्षण व्रत की समाप्ति पर उद्यापन समारोह विशेष रूप से मनाये गए ,ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ करवा कर भेंट की गईं तथा ग्रन्थ लेखकों ने अपने ग्रन्थ की समापन तिथि में इस दशलक्षण पर्व की तिथियों को भी चुना। [10]

ऐसा लगता है कि दशलक्षण व्रत और पर्व शुद्ध आध्यात्मिक होने से यह विशेष रूप से मुनि संघों का व्रत रहा ,किन्तु चातुर्मास में होने से उसका लाभ समाज को भी विशेष प्रेरणा से मिला ,तदनंतर श्रावकों में भी विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से उन्हीं दस धर्मों की विशेष आराधना व्रत,पूजा-पाठ,प्रवचन,सामायिक,प्रतिक्रमण के रूप में विकसित हुआ। जिस प्रकार वही महाव्रत ही श्रावकों के लिए अणुव्रत कहलाते हैं ,उसी प्रकार मुनि धर्म की मुख्यता से कथित दश धर्म , श्रावकों के हित में होने से उपचार से श्रावकों के लिए भी कहे जाने लगे। अभ्यास हेतु उनके जीवन में भी ये प्रेरणादायक और हितकारक थे अतः उनके अनुरूप अणुव्रत की तरह इसका कथन भी श्रावकों के लिए किया जाने लगा। आचार्य अकलंक भी राजवार्तिक में ऐसा ही अभिप्राय व्यक्त करते हुए कहते हैं कि ये धर्म चौथे व पाँचवें गुणस्थान वाले के क्रोधादि की निवृत्तिरूप यथासंभव होते हैं तथा मुनियों के प्रधानता से होते हैं किन्तु अज्ञानी मिथ्यादृष्टि के नहीं होते।[11]यही अभिप्राय पञ्चविंशतिका में भी अभिव्यक्त है -

आद्योत्तमक्षमा यत्र सो धर्मो दशभेदभाक्।

श्रावकैरपि सेव्योऽसौ यथाशक्ति यथागमम् ।।

---

[9] हिंदी जैन व्रत कथा साहित्य – डॉ.पदमकुमार जैन ,हर्षित प्रकाशन ,दिल्ली ,2015,पृष्ठ 112,113,156

[10] पर्युषण के दस दिन ,मुनि श्री समता सागर जी महाराज ,संपा.ब्र.पीयूष शास्त्री,1999,प्रथम संस्करण ,पृष्ठ-6

[11] रा.वा.9/6/688

उत्तम क्षमा है आदि में जिसके तथा जो दश भेदों से युक्त है, उस धर्म का श्रावकों को भी अपनी शक्ति और आगम के अनुसार सेवन करना चाहिए।[12]

'दसधम्मसारो'[13] के मंगलाचरण में मैंने स्वयं दशलक्षणपर्व को नमन किया है –

णमो हु सव्वजिणाणं आयरियोवज्झायसाहूणं य ।

णमो य पज्जुसणाणं णमो दसलक्खणपव्वाणं ।।

सभी जिनेन्द्र भगवंतों को मेरा नमस्कार ,सभी आचार्यों,उपाध्यायों और साधुओं को मेरा नमस्कार,पर्युषण को नमस्कार और दसलक्षण पर्वों को नमस्कार ।

दशलक्षण व्रत कब और कैसे करें ?

वर्तमान में आधुनिकता की होड़ में दशलक्षण व्रत के तौर तरीके भले ही बदलते जा रहे हों पर उसे करने की जो प्राचीन परंपरा शास्त्र में वर्णित है ,उसका हमें अवश्य ज्ञान होना चाहिए । अतः उसकी विधि यहाँ यथावत् प्रस्तुत है - 'दशलक्षण व्रत भाद्रपद मास में शुक्लपक्ष की पंचमी से आरंभ किया जाता है। पंचमी तिथि को प्रोषध करना चाहिए तथा समस्त गृहारम्भ का त्यागकर जिनमंदिर में जाकर, पूजन-अर्चन, अभिषेक आदि धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिए। अभिषेक के लिए चौबीस भगवान की प्रतिमाओं को स्थापन कर उनके आगे दशलक्षण यंत्र स्थापित करना चाहिए। पश्चात् अभिषेक क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। मोक्षाभिलाषी भव्य अष्ट द्रव्यों से भगवान जिनेन्द्र का पूजन करता है। यह व्रत भादों सुदी पंचमी से भादों सुदी चतुर्दशी तक किया जाता है। दसों दिन ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। इस व्रत को दस वर्ष तक पालन किया जाता है, पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है। इस व्रत की उत्कृष्ट विधि तो यही है कि दस उपवास लगातार अर्थात् पंचमी से लेकर चतुर्दशी तक दस उपवास करना चाहिए अथवा पंचमी और चतुर्दशी का उपवास तथा शेष दिनों में एकाशन करना चाहिए, परन्तु यह व्रत विधि शक्तिहीनों के लिए बतायी गई है, यह परममार्ग नहीं है।[14]

---

12 पं.वि./6/59

13 दसधम्मसारो,गाथा-1,प्रो अनेकांत कुमार जैन,प्रका.जिन फाउंडेशन,नई दिल्ली ,2003,पृष्ठ 7

14 दशलाक्षणिकव्रते भाद्रपदमासे शुक्ले श्रीपंचमीदिने प्रोषधः कार्यः, सर्वगृहारम्भं परित्यज्य जिनालये गत्वा पूजार्चनादिकञ्च कार्यम्।चतुर्विंशतिकां प्रतिमां समारोप्य जिनास्पदे दशलाक्षणिकं यन्त्रं तदग्रे ध्रियते, ततश्च स्नपनं कुर्यात्, भव्यः मोक्षाभिलाषी अष्टधापूजनद्रव्यैः जिनं पूजयेत्।पंचमीदिनमारभ्य चतुर्दशीपर्यन्तं व्रतं कार्यम्, ब्रह्मचर्यविधिना स्थातव्यम्। इदं व्रतं दशवर्षपर्यन्तं करणीयम्, ततश्चोद्यापनं कुर्यात्। अथवा

दशलक्षण धर्म –

आचार्य कुन्दकुन्द(प्रथम शती) ने वारसाणुवेक्खा में गाथा 71 से 80 तक क्रमशः दश धर्मों का स्वरुप समझाया है ,इसी प्रकार कार्तिकेयानुप्रेक्षा में भी 394 से गाथा 403 तक क्रमशः दशधर्मों का स्वरुप समझाया है । तत्त्वार्थसूत्र तथा उसके टीकाकारों ने उत्तमक्षमादि दश धर्मों का उल्लेख किया है ,इसके अलावा भी अनेक ग्रंथों में दशधर्म की चर्चा विद्यमान है । ज्ञानार्णव में भी उल्लिखित है - **दशलक्ष्मयुत: सोऽयं जिनैर्धर्म: प्रकीर्तित:।**[15]'जिनेंद्र भगवान् ने धर्म को दशलक्षण युक्त कहा है। टीकाकारों ने इसमें सम्मिलित 'उत्तम' विशेषण पर भी चर्चा की है ,आचार्य पूज्यपाद ने स्पष्ट लिखा है कि उत्तम विशेषण का प्रयोग दृष्ट प्रयोजन की निवृत्ति के अर्थ में है - **दृष्टप्रयोजनपरिवर्तनार्थमुत्तमविशेषणम्** ।[16] यही अभिप्राय आचार्य अकलंक ने भी प्रगट किया है ।[17] चारित्रसार में इसका अर्थ और अधिक खोल कर प्रगट करते हुए कहा गया कि ख्याति व पूजादि की भावना की निवृत्ति के अर्थ उत्तम विशेषण दिया है। अर्थात् ख्याति पूजा आदि के अभिप्राय से धारी गयी क्षमा आदि उत्तम नहीं है।[18] उत्तम विशेषण का एक अर्थ 'सम्यग्दर्शन' भी किया गया है यद्यपि इसका कोई सीधा प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है किन्तु चूँकि ये धर्म मूलतः मुनिराज के ही माने गए हैं और सम्यग्दृष्टि आदि के उपचार से इनका प्रारंभ माना गया है अतः इस उत्तम विशेषण से सम्यग्दर्शन की उपस्थिति का अर्थ लगाया जा सकता है ।

'मिच्छामि दुक्कडं' और 'पर्युषण पर्व' कहना गलत नहीं है –

वर्तमान में दिगंबर जैन समाज में व्यवहार में मूल प्राकृत आगमों के शब्दों के प्रायोगिक अभ्यास के अभाव के कारण कई प्रकार की भ्रांतियां उत्पन्न हो रही हैं जिस पर गम्भीर चिन्तन मनन आवश्यक है । मैं इस विषय में कुछ स्पष्टीकरण देना चाहता हूँ -

१.एक भ्रान्ति यह फैल रही है कि 'मिच्छामि दुक्कडं' शब्द श्वेताम्बर परंपरा से आया है । कारण यह है कि श्वेताम्बर श्रावकों में मूल प्राकृत के प्रतिक्रमण पाठ पढने का अभ्यास ज्यादा है । दिगंबर परंपरा में यह कार्य मात्र मुनियों तक सीमित है । दिगंबर श्रावक भगवान् की पूजा

दशोपवासा: कार्या:।अथवा पंचमीचतुर्दश्योरुपवासद्वयं शेषमेकाशनमिति केषाञ्चिन्मतम्, तत्तु शक्तिहीनतयाङ्गीकृतं न तु परमो मार्ग:।...(स्रोत-Website-Encyclopedia of Jainism)

15 ज्ञानार्णव/2-10/2 ,तथा पं.वि./1/7 ; कार्तिकेयानुप्रेक्षा-478 ; द्रव्यसंग्रह टीका/35/101/8 ; द्रव्यसंग्रह टीका/35/145/3 ; दर्शनपाहुड़ टीका /9/8/4

16 सर्वार्थसिद्धि/9/6/413/5

17 राजवार्तिक/9/6/26/598/29

18 उत्तमग्रहणं ख्यातिपूजादिनिवृत्त्यर्थं।- चारित्रसार/58/1

ज्यादा करते हैं ,कुछ श्रावक प्रतिक्रमण करते हैं तो हिंदी अनुवाद ही पढ़ते हैं ,मूल प्राकृत पाठ कम श्रावक पढ़ते हैं अतः 'मिच्छामि दुक्कडं' का प्रयोग श्वेताम्बर समाज में ज्यादा प्रचलन में आ गया जबकि दिगंबर परंपरा के सभी प्रतिक्रमण पाठों में स्थान स्थान पर 'मिच्छामि दुक्कडं' का प्रयोग भरा पड़ा है ,अतः यह कहना कि यह श्वेताम्बरों से आया है बिल्कुल गलत है । वास्तविकता यह है कि प्रतिक्रमण पाठ गौतम गणधर के काल से यथावत चल रहा है जब श्वेताम्बर दिगंबर का भेद भी नहीं हुआ था । यह पाठ प्रतिदिन करणीय था इसलिए वास्तव में दिगंबर-श्वेताम्बर परंपरा के मुनियों ने अपने कंठों में इसे श्रुतपरम्परा की भांति आज तक सुरक्षित रखा हुआ है ,इसलिए वह कुछ पाठ भेद के बाद भी दोनों जगह लगभग एक सा है ।

२. दूसरी भ्रान्ति यह फ़ैल रही है कि दसलक्षण पर्व को 'पर्युषण पर्व' कहना गलत है क्यों कि यह श्वेताम्बर परंपरा में मनाया जाता है । यह धारणा भी ठीक नहीं है । यद्यपि श्वेताम्बर परंपरा में यह शब्द ज्यादा प्रचलित है तथा श्वेताम्बर आगमों में इसका उल्लेख भी बहुतायत से मिलता है किन्तु दिगंबर साहित्य में भगवती आराधना और मूलाचार में साधुओं के जिनकल्पी और स्थविरकल्पी - ये दो भेद बताये हैं और स्थविरकल्प के दस भेद बताते हुए लिखा है –

आचेलक्कुद्देसियसेज्जाहररायपिंडकिरियम्मे।

जेट्ठपडिक्कमणे वि य मासं पज्जोसवणकप्पो।।[19]

विजयोदया टीका में लिखा है कि ' **पज्जोसमणकल्पो नाम दशमः । वर्षाकालस्य चतुर्षु मासेषु एकत्रैवावस्थानं भ्रमणत्यागः**'[20] अर्थात् पज्जोसवण नाम का दसवां कल्प है जिसका अभिप्राय है वर्षा काल के चार मासों में भ्रमण त्यागकर एक ही स्थान पर निवास करना । इस हिसाब से देखें तो चातुर्मास को पर्युषण कहते हैं और इस दौरान जो भी पर्व आते हैं उन्हें पर्युषण पर्व कहते हैं ।

इस प्रकरण में **पंडित कैलाशचंद शास्त्री जी** ने एक स्पष्टीकरण भी दिया है –

'प्राकृत में दसवें कल्प का नाम 'पज्जोसवणा' है उसका संस्कृत रूप पर्युषणाकल्प है । इसी से भादों के दसलक्षण पर्व को पर्युषण पर्व भी कहते हैं । श्वेताम्बर परंपरा में भी इसका उत्कृष्ट काल आषाढ पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक चार मास है । जघन्य काल सत्तर दिन है । भाद्रपद शुक्ला पंचमी से कार्तिक की पूर्णिमा तक सत्तर दिन होते हैं । संभवतः इसी से

[19] देखें - भगवती आराधना –गाथा ४२३ ,पृष्ठ ३२०,प्रका.जैन संस्कृति संरक्षक संघ ,शोलापुर ,२००६तथा मूलाचार ,अधिकार-१०,गाथा-१८

[20] भ.आरा.विजयो.टीका पृष्ठ ३३३

दिगंबर परंपरा में पर्युषण पर्व भाद्रपदशुक्ला पंचमी से प्रारंभ होते हैं। इस काल में साधु विहार नहीं करते।[21]

एक निवेदन यह भी है कि आजकल हम लोग बहुत सी प्रचलित परम्पराओं और अनुष्ठानों तथा पर्वों को लेकर यह कहने लग गए हैं कि यह तो अन्य परंपरा से हमारे यहाँ आई है ,यह हमारी नहीं है। हमें इस विषय पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। तथा सोच समझ कर कथन करना चाहिए। हमारा बहुत सा साहित्य नष्ट हो गया है ,किन्तु परंपरा में कई आवश्यक विधान हमारे आचार्यों /विद्वानों ने कुछ सोच समझ कर समाज के हित में प्रारंभ किये थे। हम हर चीज को दूसरों का कह कर यदि दुत्कारते रहेंगे तो एक दिन अपना ही वजूद खो बैठेंगे।

*** जैनदर्शन विभाग**

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय ,नई दिल्ली

anekant76@gmail.com

प्राकृत भाषा में दशधर्म का सार

दसधम्मसारो

(प्रो डॉ.अनेकांत कुमार जैन,नई दिल्ली)

मंगलाचरण

(गाहा)

णमो हु सव्वजिणाणं आयरियोवज्झायसाहूणं य।
णमो य पज्जुसणाणं णमो दसलक्खणपव्वाणं ।।१।।

सभी जिनेन्द्र भगवंतों को मेरा नमस्कार ,सभी आचार्यों,उपाध्यायों और साधुओं को मेरा नमस्कार,पर्युषण को नमस्कार और दसलक्षण पर्वों को नमस्कार ।

(उग्गाहा)

धम्मसरूवं

दंसणमूलो धम्मो वत्थुसहावो खलु जीवरक्खणं ।
चारित्तं सुदं दया धम्मो य सुद्धवीयरायभावो ।।२।।

दर्शन का मूल धर्म है ,वस्तु का स्वभाव धर्म है ,जीवों की रक्षा ही धर्म है ,चारित्र धर्म है ,श्रुत धर्म है ,दया धर्म है और विशुद्ध वीतरागभाव धर्म है –ऐसा जानो।

धम्मस्स दसलक्खणं

धम्मस्स दसलक्खणं खमा मद्दवज्जवसउयसच्चा य।
संजमतवचागाकिंयण्हं बंभं य जिणेहिं उत्तं ।। ३ ।।

[21] देखें - भगवती आराधना पृष्ठ 334

जिनेन्द्र भगवान् ने धर्म के दस लक्षण कहे हैं – उत्तम क्षमा , उत्तम मार्दव , उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ।

उत्तमखमा

खमा हु अप्पसहावो कोहाभावे य जायइ अप्पम्मि ।

मिच्छत्तस्साभावे जहा य सम्मत्तं हवइ अप्पम्मि ।।४।।

क्षमा आत्मा का स्वभाव है , वह क्रोध कषाय के अभाव स्वरूप आत्मा में उत्पन्न होती है जैसे मिथ्यात्व के अभाव में सम्यक्त्व आत्मा में प्रगट होता है ।

उत्तममज्जवं

मज्जवप्पसहावो य माणाभावे य जायइ अप्पम्मि ।

मिच्छत्तस्साभावे जहा य सम्मत्तं हवइ अप्पम्मि ।।५।।

मार्दव आत्मा का स्वभाव है , वह मान कषाय के अभाव स्वरूप आत्मा में उत्पन्न होता है जैसे मिथ्यात्व के अभाव में सम्यक्त्व आत्मा में प्रगट होता है ।

उत्तमज्जवं

अज्जवप्पसहावो य मायाभावे य जायइ अप्पम्मि ।

मिच्छत्तस्साभावे जहा य सम्मत्तं हवइ अप्पम्मि ।।६।।

आर्जव आत्मा का स्वभाव है , वह माया कषाय के अभाव स्वरूप आत्मा में उत्पन्न होता है जैसे मिथ्यात्व के अभाव में सम्यक्त्व आत्मा में प्रगट होता है ।

उत्तम-सउचं

सउचं अप्पसहावो लोहाभावे य जायइ अप्पम्मि ।

मिच्छत्तस्साभावे जहा य सम्मत्तं हवइ अप्पम्मि ।।७।।

शौच आत्मा का स्वभाव है , वह लोभ कषाय के अभाव स्वरूप आत्मा में उत्पन्न होता है जैसे मिथ्यात्व के अभाव में सम्यक्त्व आत्मा में प्रगट होता है ।

उत्तम-सच्चं

सच्चधम्मे य सच्चे वयणे अत्थि भेओ जिणधम्मम्मि ।

पढमो वत्थुसहावो दुवे अत्थि महव्वयं साहूणं ।।८।।

जिन धर्म में उत्तम सत्य धर्म और सत्य वचन में भेद है । एक (उत्तम सत्य धर्म)तो वस्तु का स्वभाव है और दूसरा (सत्य वचन) मुनियों का महाव्रत है ।

उत्तम-संजमो

संजमणमेव संजम जो सो खलु हवइ समत्ताणुभाइ ।
णियाणुभवणिच्छयेण ववहारेण पचेंदियणिरोहो ।।९।।

संयमन ही संयम है जो निश्चित ही सम्यक्त्व का अनुभावी होता है । निश्चयनय से निजानुभव और व्यवहार से पंचेन्द्रिय निरोध संयम कहलाता है ।

उत्तम-तवो

इच्छाणिरोहो तवो कम्मखवट्ठं सगरूपायरणं ।
णियबहितवो भेयेण तेसु झाणं परमतवोद्दिट्ठं ॥१०॥

इच्छा का निरोध तप है , कर्म क्षय के लिए अपने स्वरूप में रमण करना तप है ।तप छह अन्तरंग और छह बहिरंग के भेद से बारह प्रकार का होता है उनमें भी ध्यान को परम तप कहा गया है ।

उत्तम-चागं

सगवत्थुणं य दाणं चागपरदव्वेसु रागाभावो ।
णाणचागो ण होदि य भेयणाणं अत्थि पच्चक्खाणं ॥११॥

स्व वस्तुओं का दान होता है और पर वस्तुओं में रागद्वेष का अभाव त्याग है । निश्चित ही ज्ञान का त्याग नहीं होता है (जबकि दान होता है) और वास्तव में पर द्रव्यों से भेदज्ञान होना ही प्रत्याख्यान(त्याग) है ।

उत्तमाकिंयण्हं

परकिंचिवि मज्झ णत्थि भावणाकिंयण्हं गणहरेहिं ।
अंतबहिगंथचागो अणासत्तो हवइ अप्पासयेण ॥१२॥

पर पदार्थ कुछ भी मेरा नहीं है ऐसी भावना ही उत्तम आकिंचन्य धर्म है –ऐसा गणधरों के द्वारा कहा गया है ।अन्तरंग और बहिरंग परिग्रहों का त्याग और उनके प्रति अनासक्ति आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होती है ।

उत्तमबंभचय्यं

बंभणि चरणं बंभं जीवो विमुक्कपरदेहतितिस्स ।
विवरीयलिंगेसु खलु आसत्ति कारणं य भवदुक्खस्स ॥१३॥

जीव का परदेह की सेवा से रहित होकर अपनी शुद्ध आत्मा में रमण करना ब्रह्मचर्य है ।निश्चित रूप से विपरीत लिंग में आसक्ति ही भव दुःख का मूलकारण है ।

खमापव्वं

जीवखमयंति सव्वं खमादियसे च याचइ सव्वेहिं ।
'मिच्छा मे दुक्कडं ' य बोल्लइ वेरं मज्झं ण केण वि ॥१४॥

क्षमा दिवस पर जीव सभी जीवों को क्षमा करते हैं सबसे क्षमा याचना करते हैं और कहते हैं मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हों तथा मेरा किसी से भी बैर नहीं है

धम्मसारो

धारइ जो दसधम्मो पंचमयाले णियसत्तिरूवेण ।
सो अणिंदियाणंदं लहइ 'अणेयंत' सरूवं अप्पं ॥१५॥

इस विषम पंचम काल में भी जो इन दस धर्मों को यथा शक्ति धारण करता है ,वह अतिन्द्रित आनंद और 'अनेकांत' स्वरूपी आत्मा को प्राप्त करता है ।